www.jagran.com राष्ट्रीय संस्करण
दैनिक जागरण
सोमवार 21 जनवरी 2019

दैनिक जागरण

प्रार्थना मनुष्य को ईश्वर से जोड़ने वाली कड़ी है

विपक्ष का एजेंडा

यह अच्छा है कि विपक्षी दलों ने अंततः महसूस किया कि मोदी सरकार हटाने का नारा देने के साथ ही देश के लिए कोई एजेंडा पेश करना भी आवश्यक है। यह ठीक नहीं कि अभी तक उनकी ओर से केवल यही सुनने को मिला है कि मोदी सरकार को हटाना है। इसी आधार पर वे अपनी एकजुटता को मजबूती देने में लगे हुए हैं। बीते दिनों कोलकाता में ऐसा ही किया गया। ममता बनर्जी की पहल पर विपक्ष के तमाम नेता जब कोलकाता में उपस्थित हुए तो इस दौरान उनका सारा जोर यह प्रचारित करने में रहा कि मोदी सरकार के कारण देश गड्ढे में जा रहा है। यह साबित करने की कोशिश में कई नेताओं की ओर से उल्टे-सीधे बयान भी दिए गए। किसी को लोकतंत्र और संविधान से खिलवाड़ होता दिखा तो किसी को संविधान और चुनाव प्रक्रिया ही खत्म होती नजर आई। ऐसी बातें करके तालियां तो बटोरी जा सकती हैं, लेकिन देश की जनता को भरोसे में नहीं लिया जा सकता। आम जनता यह जानना चाहेगी कि आखिर विपक्षी दलों का गठबंधन मोदी सरकार को हटाकर करेगा क्या? इतना ही नहीं, जनता यह भी जानना-समझना चाहेगी कि विपक्षी दलों का गठबंधन किस रूप में आकार लेगा और इसमें कांग्रेस की भूमिका क्या होगी? विपक्षी दलों के मन में कुछ भी हो, जनता यह विस्मृत नहीं कर सकती कि कांग्रेस के बाहरी समर्थन से देवेगौड़ा और गुजराल ने किस तरह की सरकारों का संचालन किया था और उसके कैसे दुष्परिणाम सामने आए थे? आज बिना कांग्रेस और भाजपा के नेतृत्व वाली केंद्रीय सत्ता की कल्पना कोई बेहतर उम्मीद नहीं जगाती।

यदि कांग्रेस सचमुच विपक्षी एकता का हिस्सा है तो क्या कारण है कि उत्तर प्रदेश में वह सपा और बसपा के मेल-मिलाप में हिस्सेदार नहीं बन सकी? क्या कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी कोलकाता इसलिए नहीं गए, क्योंकि खुद उनकी रैली में ममता बनर्जी भी दिल्ली नहीं आई थीं? इसी तरह क्या मायावती इसलिए कोलकाता नहीं गईं, क्योंकि वह भी प्रधानमंत्री पद की वैसे ही दावेदार हैं जैसे कि ममता बनर्जी हैं? इन सारे सवालों के जवाब में केवल यह कहते रहने से बात बनने वाली नहीं है कि प्रधानमंत्री पद के दावेदार का फैसला चुनाव बाद होगा। यह और कुछ नहीं, राजनीतिक सौदेबाजी का मंच और माहौल तैयार करना है। विपक्षी दल यह भी याद रखें तो बेहतर कि राजनीतिक दलों से इतर देश का भी अपना एक एजेंडा होता है और उसे हर-हाल में आगे बढ़ाया जाना आवश्यक होता है। यदि नोटबंदी के फैसले को अलग रख दें तो मोदी सरकार ने करीब-करीब उसी एजेंडे को आगे बढ़ाया है जो मनमोहन सरकार लेकर चल रही थी। सच्चाई यह भी है कि मनमोहन सरकार ने भी वाजपेयी सरकार के एजेंडे को ही आगे बढ़ाने की कोशिश की। यह सही है कि मोदी सरकार सभी मोर्चों पर देश की अपेक्षाओं के अनुरूप प्रदर्शन नहीं कर सकी है और वह अपने उन तमाम आश्वासनों के संदर्भ में जवाबदेह भी है जो उसने सत्ता में आने के समय दिए थे, लेकिन यह भी नहीं कहा जा सकता कि जनवरी 2019 में देश वहीं खड़ा है जहां मई 2014 में था।

आरोग्य की कुंजी

केंद्र की महत्वाकांक्षी आयुष्मान भारत योजना से झारखंड के 57 लाख परिवारों को जोड़ने वाली सरकार का फोकस अब आरोग्य कुंजी पर है। झारखंडवासियों को आरोग्य रखने की यह ऐसी कुंजी होगी, जो चंद मिनटों में सुदूर क्षेत्रों में भी स्वास्थ्य सुविधा पहुंचाने में सक्षम होगी। सरकार ने इस बाबत प्रशिक्षित स्वास्थ्य सहियाओं को बाइक एंबुलेंस और मेडिकल किट के साथ तैनात करने की सोच विकसित की है। सरकार का मानना है कि बाइक के सहारे जंगल और पहाड़ी इलाकों में बसे गांवों तक आसानी से पहुंच सुनिश्चित हो सकेगी, जिससे चिकित्सा के अभाव में किसी की जान नहीं जाएगी। छोटी बीमारियों की चिकित्सा के लिए खासकर ग्रामीण मरीजों को शहर की दौड़ नहीं लगानी होगी। इससे समय और पैसे दोनों की बचत होगी। बहरहाल पायलट प्रोजेक्ट के तहत चतरा और लातेहार से इसकी शुरुआत हो चुकी है। प्रयोग सफल रहने पर इसे पूरे प्रदेश में प्रभावी बनाने की घोषणा मुख्यमंत्री ने की है। इतना ही नहीं 22 जनवरी को पेश होने वाले बजट में इसे शामिल करने की भी बात कही है। राज्यवासियों के स्वास्थ्य संवर्द्धन को केंद्र में रखकर शुरू की गई इस योजना की सराहना की जानी चाहिए। सराहना इसलिए भी, क्योंकि स्वास्थ्य सुविधाओं के राष्ट्रीय मानकों पर झारखंड की स्थिति आज भी बहुत अच्छी नहीं है। आज भी यहां की 70 फीसद से अधिक महिलाएं एनीमिया से पीड़ित हैं। कुपोषण की वजह से आज भी 48 फीसद बच्चे ठिगने कद के हैं। औसत वजन के मामले में भी वे राष्ट्रीय औसत से काफी पीछे हैं। हालांकि हाल के वर्षों में स्वास्थ्य के सेक्टर में आधारभूत संरचनाओं का निर्माण जरूर हुआ है, परंतु चिकित्सक और पारा मेडिकल स्टाफ की किल्लत अब तक दूर नहीं हो सकी है। विशेषज्ञ चिकित्सकों की तो यहां घोर कमी है ही। ऐसे में जरूरत है मौजूदा स्वास्थ्य सुविधाओं और मानव संसाधनों के बेहतर उपयोग की। सरकार को चाहिए कि वह मौजूदा स्वास्थ्य नीतियों को और भी कारगर बनाए ताकि राज्य के मेडिकल कॉलेजों से सफलता अर्जित करने के बाद चिकित्सक झारखंड में ही अपनी सेवाएं दें।

आरक्षण पर नए नजरिये की दरकार

तरुण गुप्त

यदि सत्तर वर्षों तक अपवाद वाली व्यवस्था कायम रहकर एक नियम बन जाती है तो यह उसकी सफलता पर ही सवाल खड़े करती है

हमारे जैसे विविधता भरे देश और कई खांचों में बंटे बहुरंगी समाज में हमेशा कुछ न कुछ ऐसे मसले चर्चा के केंद्र में रहेंगे जिन पर सभी वर्गों के बीच सहमति लगभग असंभव है। यदि बीते कुछ दिनों में अखबारों और समाचार चैनलों पर आर्थिक आरक्षण को लेकर हुए विमर्श पर गौर करें तो यही कहा जा सकता है कि इस मुद्दे पर दोनों खेमों की ओर से जुबानी जंग जारी रहेगी। बीते कुछ दिनों के घटनाक्रम पर नजर डालें तो यह भी लगेगा कि समाज में विभाजक रेखाएं खींचने वाला आरक्षण का मुद्दा कैसे राजनीतिक दलों को एक सूत्र में पिरोने वाली कड़ी के रूप में उभरा है। ऐसा विरले ही देखने को मिलता है कि संसद के दोनों सदन किसी संविधान संशोधन विधेयक पर लगभग आम सहमति से मुहर लगा दें। इसमें एक विरोधाभास वाली अजीब स्थिति भी दिखी कि विपक्षी दलों ने इस मसले पर सरकार को कोसने के बावजूद संसद में विधेयक के पक्ष में मतदान किया।

विपक्ष का मुख्य आरोप है कि आरक्षण के दायरे में विस्तार राजनीतिक अवसरवाद है और इसके पीछे मंशा सवर्ण जातियों के मतदाताओं को लुभाना है जो कथित तौर पर भाजपा से कुपित हैं, जिसकी कीमत पार्टी को हालिया विधानसभा चुनावों में चुकानी पड़ी। यह संभव है कि केंद्र के उस फैसले पर जनता ने तल्ख प्रतिक्रिया दी हो जिसमें सरकार ने एससी-एसटी अत्याचार निरोधक कानून के कड़े प्रावधानों को विधायी प्रक्रिया के जरिये फिर से बहाल किया था, लेकिन अगर विरोधी इसी बात को लेकर निशाना साध रहे हैं कि आम चुनाव से ठीक पहले सरकार ने यह कदम उठाया तो देश में पहली बार ऐसा नहीं हो रहा है। न ही इसे लोकलुभावनवाद का खराब उदाहरण कहा जा सकता है। आखिर चुनाव मैदान में विजय हासिल करना ही तो सभी दलों की सबसे बड़ी प्राथमिकता बन गई है।

कुछ लोग इस संविधान संशोधन की वैधानिकता पर भी सवाल उठा रहे हैं। उनकी दलील है कि यह दांव संभवतः न्यायिक समीक्षा में खरा नहीं उतर पाएगा। आने वाले दिनों में बौद्धिक तबके में इस पर गहन चर्चा की उम्मीद है। संसद की सर्वोच्चता और संप्रभुता भी इसमें दांव पर लगी हैं। पहले भी ऐसे कई अवसर आए हैं जब जनता को कुछ अदालती आदेशों की नीयत में तो कोई खराबी नहीं लगी, लेकिन साथ ही यह भी महसूस हुआ कि उन मसलों का समाधान संसद में कहीं बेहतर ढंग से निकल सकता था। चाहे धारा 377 की समाप्ति हो या व्यभिचार से जुड़ा कानून या राजमार्गों के किनारे शराब की बिक्री का मसला, इन पर लोगों को यही लगा कि भले ही यह न्यायिक अतिक्रमण न भी हो तब भी इससे विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच की रेखा अवश्य धुंधली होती प्रतीत हुई।

आर्थिक आरक्षण के विरोध में यह तर्क भी दिए जा रहे हैं कि संविधान निर्माताओं ने ऐसे आरक्षण के विचार को खारिज किया था। आखिर बुद्धिजीवी वर्ग कब तक संविधान सभा में हुई चर्चा का ही हवाला देता रहेगा? संविधान निर्माताओं की बुद्धिमता और मंशा का पूरा सम्मान करते हुए क्या यह कहना उचित होगा कि राजनीतिक चातुर्य और संवैधानिक दूरदर्शिता केवल संविधान सभा के सदस्यों के पास ही थी? क्या समाज सतत परिवर्तनशील नहीं है? स्वतंत्रता के तुरंत बाद की स्थितियां शायद सात दशक बाद उतनी प्रासंगिक न रह गई हों।

अवधेश राजपूत

संविधान के मूल ढांचे की परिभाषा भी एक बड़ी कसौटी बन गई है। संविधान के मूल ढांचे में केवल स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव और निजी स्वतंत्रताओं को ही रखा जाना चाहिए। शेष अन्य सभी पर स्थिति के अनुरूप विचार किया जाना बेहतर है। प्रशासनिक क्रियाकलापों और विधायिका एवं कार्यपालिका के रोजमर्रा के कामकाज पर मूल ढांचे का लिटमस टेस्ट नहीं आजमाया जाना चाहिए। किसी भी संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य में अगर कोई प्रस्ताव इतने भारी बहुमत से पारित हो, जैसा कि आर्थिक आरक्षण मामले में हुआ तब उसे बिना किसी बाधा के कानून बन जाना चाहिए। समानता का मूल सिद्धांत हमारे संविधान में विद्यमान है। इसका महिमामंडन भी हुआ है जो सही भी है। इसमें कोई समझौता नहीं किया जा सकता। इस मोर्चे पर कुछ विधायी कदमों के साथ ही कुछ न्यायिक हस्तक्षेप भी हुए हैं। इस विचार को और विस्तार देते हुए कहा जा सकता है कि आदर्श समाज में किसी भी प्रकार का आरक्षण समानता के सिद्धांत को ही चुनौती देता है। हमारे समाज में कुछ वर्गों के साथ ऐतिहासिक भेदभाव और अन्याय के कारण ही आरक्षण की व्यवस्था की गई थी जिसका प्रावधान समानता के सिद्धांत के आलोक में अपवाद के तौर पर लागू किया गया था। यदि सत्तर वर्षों तक अपवाद वाली व्यवस्था कायम रहकर एक नियम बन जाती है तो यह उसकी सफलता पर ही सवाल खड़े करती है।

आरक्षण की शुरुआत 1951 में स्वतंत्रता के तुरंत बाद हुई थी। इसे सभी के लिए एक समान परिवेश बनाने के मकसद से लागू किया गया था, जिसमें अगले दस वर्षों में इसकी समीक्षा का भी प्रावधान था। यह समीक्षा कभी नहीं हो पाई, बल्कि 1951 में एससी-एसटी के लिए जो 22.5 प्रतिशत आरक्षण था उसे 1990 में ओबीसी को सम्मिलित करके 49.5 प्रतिशत कर दिया गया। सरकारी नौकरियों में लागू इस आरक्षण का 2006 में विस्तार करते हुए उच्च शिक्षा में भी लागू कर दिया गया। निजी शिक्षण संस्थानों में भी इसे हरी झंडी दिखाने के बाद निजी क्षेत्र के उद्यमों में भी इसे लागू करने की चर्चा अब दबे स्वरों में हो रही है।

यदि आरक्षण का मकसद समान अवसरों के परिवेश का निर्माण करना है तो पूरा ध्यान प्राथमिक, उच्च-प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा पर दिया जाना चाहिए। शिक्षा का अधिकार जितना महत्वपूर्ण है उतनी ही अहम सही शिक्षा भी है। यहां मूल में गुणवत्ता है। उच्च शैक्षणिक संस्थानों में संरक्षणवाद के बजाय स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने पर ध्यान देना जरूरी है ताकि उनका स्तर सुधरकर निजी स्कूलों के बराबर हो सके। भारत में सरकारी स्कूलों में छात्रों की क्षमताओं से जुड़ी तमाम रिपोर्ट उनकी दयनीय दशा को ही बयान करती हैं। अगर आरक्षण जैसी व्यवस्था को सार्थक बनाना है तो इसका लाभ उन जरूरतमंद छात्रों को 18 वर्ष से पहले ही विभिन्न स्तरों पर दिया जाना चाहिए ताकि उसके बाद वे स्वयं सक्षम होकर अपने लिए सही विकल्प चुन सकें।

किसी भी किस्म का आरक्षण चाहे वह सामाजिक, शैक्षणिक या आर्थिक आधार पर हो, उसकी पहली शिकार बनती है योग्यता। हमें उच्च शिक्षण संस्थानों में अधिक सीटों और अपनी शिक्षित आबादी के लिए अधिक नौकरियों की दरकार है। यदि उचित कदम नहीं उठाए गए तो आक्रोश, असंतुष्टि के साथ ही एक वर्ग विशेष का विदेश पलायन जारी रहेगा। बुनियादी ढांचे के साथ ही कारगर जमीन अधिग्रहण एवं श्रम सुधार और प्रभावी शिक्षा नीति अपरिहार्य हो चली है। आरक्षण एक अस्थाई व्यवस्था थी। यदि सत्तर वर्षों में कोई व्यवस्था वांछित बदलाव नहीं ला पाई तब या तो वह विचार सही नहीं था या फिर उस पर सही ढंग से अमल नहीं हो पाया। इस नजरिये पर नई दृष्टि की दरकार है। हम अपने जनप्रतिनिधियों से बेहतर विचारों की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

(लेखक दैनिक जागरण के प्रबंध संपादक हैं)

response@jagran.com

जमीनी हकीकत से जूझते दावे

एनके सिंह

खेती, स्वच्छता और शिक्षा के क्षेत्र में सुधार के मोदी सरकार द्वारा किए गए वादों के मोर्चे पर मिलीजुली तस्वीर ही नजर आती है

कई बातें जो एक आम इंसान को भी आसानी से समझ आ सकती हैं, लेकिन सत्ताधारी वर्ग या तो उन्हें समझना नहीं चाहता या फिर कुछ राजनीतिक मजबूरियां उसे ऐसा करने से रोक देती हैं। खासतौर से चुनाव नजदीक हो तो ऐसा अक्सर देखने को मिलता है। इसके कुछ उदाहरणों पर गौर कीजिए। वर्ष 2014 में सत्ता में आने के बाद मोदी सरकार का सबसे बड़ा एलान था कि, '2022 तक किसानों की आय दोगुनी करेंगे।' भाजपा आज पूरे देश में और देश की आधी आबादी पर राज्य सरकारों के जरिये शासन कर रही है। पार्टी की राष्ट्रीय परिषद की विगत 11-12 जनवरी की बैठक में पारित कृषि प्रस्ताव कहता है, 'हाल के वर्षों में कृषि क्षेत्र के लिए बजट आवंटन भी बढ़ाया गया है और यह सरकार किसानों की आय दोगुनी करने के अपने लक्ष्य को हासिल करने में तेजी से अग्रसर है। यह राष्ट्रीय परिषद अपना विश्वास व्यक्त करती है कि जो मियाद निर्धारित की गई है उस समय सीमा में पार्टी अपने शासन में यह लक्ष्य पूरा कर लेगी।' लेकिन सरकार के ही कंपनी मामलों और उद्योग मंत्रालय के ताजा और पूर्व के आंकड़ों के विश्लेषण से पता चला है कि कृषि उत्पादों के दाम गैर-कृषि उत्पादों के मुकाबले पिछले 18 सालों में जितने नहीं गिरे उतने पिछले छह माह में लगातार गिरे हैं। अर्थात किसानों को उनकी पैदावार का तुलनात्मक मूल्य पिछले 18 सालों में उतना कम नहीं मिला जितना इस वर्ष। थोक मूल्य सूचकांक में गिरावट का सीधा मतलब है कि किसानों को अपने उत्पाद बेहद कम मूल्य पर बेचने पड़ रहे हैं, जबकि जीवन-यापन के लिए गैर-कृषि उत्पाद उन्हें महंगे खरीदने पड़ रहे हैं। यानी कृषि व्यवसाय लगातार नुकसानदेह होता जा रहा है। किसान के मुकाबले अन्य उत्पादक वर्ग अधिक खुशहाल हैं।

सत्य और दावों में एक और विरोधाभास देखें। मोदी सरकार का दूसरा ड्रीम प्रोजेक्ट था 'फसल बीमा योजना'। 2016 के मई महीने में शुरू की गई इस योजना के दो साल बीतने के बाद पता चला कि 2018 के अंत तक पिछले साल के मुकाबले किसानों में इस योजना की लोकप्रियता 17 प्रतिशत कम हुई है, जबकि दावा था कि 2018 तक इसके दायरे को बढ़ाकर 40 प्रतिशत किसानों की फसल को बीमित कराया जाएगा। सबसे चिंता वाली बात यह है कि जिन दस राज्यों में कम बीमा हुआ है उनमें से आठ भाजपा शासित हैं और जिन चार राज्यों में बढ़ा है उनमें से तीन गैर-भाजपा शासित। तीसरा चौंकाने वाला तथ्य है-देश भर में कृषि बीमा संख्या में ऐसी गिरावट के बावजूद निजी क्षेत्र की बीमा कंपनियों को 3,000 करोड़ रुपये का लाभ हुआ है, जबकि सरकारी बीमा कंपनियों को 4,085 करोड़ रुपये का घाटा।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जब 2014 में वाराणसी से चुनाव लड़ रहे थे तो गंगा आरती के दौरान उन्होंने कहा कि मैं यहां आया नहीं हूं। मुझे 'गंगा मां' ने बुलाया है। पांच साल बाद प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अधिकारियों ने कागज पर गढ़मुक्तेश्वर से वाराणसी तक गंगा को निर्मल कर दिया। इसके लिए उन्हें कुछ खास नहीं करना पड़ा। बस पांच मानकों में से मात्र तीन का संज्ञान लिया गया और दो को छोड़ दिया गया, जबकि स्वायत्त संस्थाओं के विशेषज्ञ कह रहे हैं कि इन तीन मानकों के आंकड़े भी फर्जी हैं। विभाग की ओर से रोजाना जारी बुलेटिन केवल घुलित ऑक्सीजन, पानी का पीएच (हाइड्रोजन-आयन की सांद्रता) और पानी का रंग बताकर इस गंगाजल को 'आचमन' करने के काबिल बता रही है, लेकिन यह नहीं पता चल रहा है कि पानी में कीटाणु की जानकारी देने वाला बायो-ऑक्सीजन डिमांड (बीओडी) और फीकल कॉलिफोर्म (शौच आदि के विसर्जन से पैदा हुए कीटाणु) का स्तर क्या है?

महामना इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी फॉर गंगा मैनेजमेंट के नदी विशेषज्ञ प्रोफेसर यूके चौधरी कह रहे हैं कि विभाग झूठ बोल रहा है। गंगा की ऑक्सीजन-वहन क्षमता शुद्धता के मानक के हिसाब से काफी कम है। खुले में शौच से मुक्ति (ओडीएफ) भी प्रधानमंत्री मोदी का ड्रीम प्रोजेक्ट था। चारों ओर इसकी बड़ी तारीफ हुई, अधिकारियों की जन-मंचों से सराहना हुई। मन की बात में भी प्रधानमंत्री ने गैर-सरकारी लोगों के कशीदे काढ़े। और अब एलान होने जा रहा है कि पूरा देश ओडीएफ हो गया है। जाहिर है चूंकि हर व्यक्ति को शौचालय 'उपलब्ध' है लिहाजा अब यह कार्यक्रम सफल मान कर रोक दिया जाएगा और चुनाव में जनता के समक्ष यह सफलता गिनाई जाएगी। वहीं भारत और अमेरिका की दो प्रमुख संस्थाओं ने एक संयुक्त सर्वे में पाया कि उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान जैसे राज्यों में जहां देश की एक-तिहाई से ज्यादा आबादी बसी है, वहां 44 प्रतिशत लोग आज भी खुले में शौच जाते हैं।

नई दिल्ली स्थित सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च और अमेरिका के पेंसिल्वेनिया, टेक्सास और कैलिफोर्निया के विश्वविद्यालयों के शोधकर्ताओं ने सर्वेक्षण में पाया है कि इन राज्यों में गरीब ग्रामीणों और आदिवासियों की मुश्किल यह है कि जो पैसे मिल रहे हैं उनमें यह शौचालय बन नहीं सकता और बकाया धन वे गरीब लगा नहीं सकते। लिहाजा राजनीतिक 'आकाओं' को खुश करने के लिए फर्जी आंकड़े दिए जा रहा हैं। केंद्र सरकार के अनुसार जहां ये राज्य अब पूरी तरह 'ओडीएफ' हो चुके हैं, वहीं इस सर्वेक्षण के अनुसार बिहार में 60 प्रतिशत, राजस्थान में 53 प्रतिशत, यूपी में 39 प्रतिशत और एमपी में 25 प्रतिशत लोग आज भी खुले में शौच जाते हैं। हालांकि इसमें सिर्फ इस अभियान के अमल की गलती नहीं है। सर्वे के अनुसार करीब 23 प्रतिशत लोग (20 प्रतिशत महिलाएं और 25 प्रतिशत पुरुष) शौचालय होते हुए भी खुले में शौच करते हैं। यह हमारे समाज की कुंठित सोच का नतीजा है। लोगों की खुले में शौच करने की आदत के कारण भारत में हर साल दो लाख बच्चे मरते हैं।

केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय से जुड़ी एक और तस्वीर पर गौर करते हैं। बीते चार साल में देश के मात्र 15 हजार प्राइमरी स्कूल ही एकल विद्यालय के अभिशाप से मुक्त हो पाए। जहां 2013 तक देश में 1,07,591 एकल स्कूल थे, उनमें आज भी 92,275 बदस्तूर मात्र एक शिक्षक के भरोसे चल रहे हैं। सोचिए एक शिक्षक और स्कूल में कक्षा एक से लेकर पांच तक की कक्षा के कम से कम करीब तीन करोड़ बच्चों के भविष्य के प्रति सरकार कैसा खिलवाड़ कर रही है। क्या इस शासन-काल में सब कुछ वैसा ही है जैसा 2014 के चुनाव के पहले सार्वजनिक भाषणों में मोदी कहते थे 'अच्छे दिन' तो श्रोता कहते थे 'आएंगे'। क्या अब भी वित्त मंत्री अरुण जेटली कहेंगे कि सरकार में कमी निकालने वाले मनोविकार से पीड़ित हैं जो आदतन हर बात में नकारात्मक पहलू खोजते रहते हैं?

(लेखक राजनीतिक विश्लेषक एवं स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

योजना

गेम बच्चों को ही नहीं बड़ों को भी प्रभावित करते हैं। आजकल तो आउटडोर गेम्स के अलावा इनडोर गेम्स भी विभिन्न तरह के हैं। अधिकतर लोग मानते हैं कि आउटडोर गेम्स खेलने से बच्चों का शारीरिक एवं मानसिक विकास अच्छी तरह से होता है, लेकिन देखा जाए तो गेम्स दरअसल बचपन से ही बच्चों के अंदर योजनाएं बनाकर चलने की आदत डालते हैं। गेम्स को जीतने के लिए योजना एवं कुशलता की आवश्यकता होती है। यह योजना व्यक्ति तभी बना सकता है जब उसे चुनौतियों का सामना करना पड़े। खेलों में नई-नई चुनौतियां होती हैं। उन चुनौतियों को सुलझा कर ही व्यक्ति विकास की ओर बढ़ता है। ठीक ऐसा ही हमारे जीवन में भी होता है, लेकिन हैरानी की बात यह है कि लोग फुटबॉल या बास्केटबॉल के लिए तो मैच की रणनीति बनाने को महत्वपूर्ण समझते हैं और जिंदगी के लिए कोई भी योजना नहीं बनाते।

योजनाबद्ध होकर किया गया कार्य समय एवं ऊर्जा की बचत करता है। गेम प्लान बनाने के लिए आपको कुछ करना होगा। सबसे पहले एक प्लेन कागज को लें और उसमें कुछ लाइनें खींच लें। अब इन लाइनों में क्रमानुसार अपनी योजनाएं लिखें। मसलन यदि आपको उच्च शिक्षा प्राप्त करनी है तो उसको कॉलम में भरें और उसकी अवधि लिखते हुए पढ़ाई का समय निर्धारित करें। यदि नौकरी प्राप्त करनी है तो कॉलम में उन पदों के नाम लिखें जो आप नौकरी में पाना चाहते हैं। पदनाम लिखने के बाद यह योजना बनाएं कि उस पद को प्राप्त करने के लिए किस तरह की परीक्षा अथवा साक्षात्कार को उत्तीर्ण करना होता है। परीक्षा की तैयारी से संबंधित नमूनों को एकत्र करें। योजना में निर्धारित समय लिखें कि पढ़ाई अथवा परीक्षा की तैयारी के लिए आपके अनुसार उचित समय कौन सा है? ये योजनाएं गेम प्लान की तरह ही हैं। गेम को व्यक्ति अपनी सुविधानुसार खेलता है इसलिए उसे इसमें आनंद आता है। जब जीवन के गेम प्लान को भी आप अपने अनुसार निर्धारित करेंगे तो आपको उसके अनुरूप कार्य करने में एकरसता अथवा बोरियत नहीं लगेगी, अपितु आनंद आएगा। यह याद रखें कि एक अच्छी योजना सड़क के उस नक्शे की तरह होती है जो केवल मार्ग ही नहीं दिखाती, अपितु सरलता से मंजिल तक भी पहुंचा देती है।

रेनू सैनी

चर्चा कम हंगामा ज्यादा

रिजवान अंसारी

हाल ही में संपन्न संसद का शीतकालीन सत्र काम-काज के लिहाज से बेहद निराशाजनक रहा

संसद के कामकाज पर नजर रखने वाली संस्था पीआरएस लेजिस्लेटिव रिसर्च के मुताबिक हालिया शीतकालीन सत्र में जहां लोकसभा की उत्पादकता 46 फीसद रही, वहीं राज्यसभा की उत्पादकता महज 26 फीसद रही। समय के लिहाज से देखें तो लोकसभा में लगभग 47 घंटे, जबकि राज्ससभा में महज 28 घंटे ही काम हो सका। राज्यसभा में तो 78 घंटे शोरगुल की भेंट चढ़ गए। दोनों सदनों में एक भी दिन न तो प्रश्नकाल और न ही शून्यकाल ठीक से चल पाया। ये आंकड़े एक नागरिक के रूप में हमें चिंतित करने वाले हैं।

गौर करें तो संसद में गतिरोध के मामले में साल-दर-साल इजाफा होता जा रहा है। आंकड़ों के मुताबिक पिछली यानी 15वीं लोकसभा में 13वीं और 14वीं लोकसभा से भी कम कामकाज हुआ। पिछले साढ़े चार साल से संसद में चल रहे गतिरोध को देखते हुए ऐसा माना जा रहा है कि 16वीं लोकसभा में कामकाज का रिकॉर्ड भी कुछ बेहतर नहीं रहने वाला है। लोगों को यह बात काफी हैरतअंगेज लग सकती है कि ब्रिटेन के हाउस ऑफ कॉमंस को आज तक एक मिनट के लिए भी स्थगित नहीं किया गया है। ब्रिटेन की संसद में नियम है कि कोई सांसद तभी बोल सकता है जब स्पीकर उसे बोलने के लिए कहे। यह भी परंपरा है कि जैसे ही स्पीकर किसी सांसद के बोलने के दौरान खड़ा होता है तो सांसद को तुरंत अपनी सीट पर बैठ जाना होता है। मगर भारतीय संसद में स्थिति बिल्कुल इसके उलट है।

ऐसे में सवाल है कि संसद में गतिरोध का स्वस्थ्य राजनीति के लिए क्या संकेत है? और एक के बाद एक सत्र में हो रहे गतिरोध के क्या कारण हैं? गौर किया जाए तो संसद में गतिरोध के लिए हमेशा ही विपक्ष को जिम्मेदार ठहराया जाता है, लेकिन इसका दूसरा पहलू यह है कि संसद को सुचारु रूप से चलाने की जिम्मेदार सत्ताधारी दल की भी होती है। दरअसल संसद में गतिरोध तभी पैदा होता है जब विपक्ष की कुछ मांगें होती हैं और सरकार उस पर चिंतन-मनन करने के बजाय उस पर अड़ियल रुख अख्तियार कर लेती है। समझना होगा कि संसद के ठप रहने से देश की समस्याएं सामने नहीं आ पाती हैं। लिहाजा जनता की आकांक्षाएं पूरी न होने से देश की व्यवस्था पर उनका भरोसा लगातार कम हो रहा है। बार-बार सदन के स्थगन होने से कई इच्छुक सदस्य न तो अपने क्षेत्र की समस्या देश के सामने रख पाते हैं और न ही सरकार से कोई सवाल ही पूछ पाते हैं। लिहाजा आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक हर नजरिये से देश का नुकसान हो रहा है। लेकिन विडंबना है कि इसकी फिक्र किसी भी राजनीतिक दल को नहीं है। गुजरे साल लगभग 24 लाख करोड़ रुपये के केंद्रीय बजट का बिना चर्चा के पारित हो जाना इसी का एक पहलू है।

बहरहाल राजनीतिक दलों को समझना होगा कि उनके समन्वय और ज्वलंत मसलों पर सार्थक बहस के प्रति दिलचस्पी से ही संसद चल सकती है। अगर संसद में इसी तरह हंगामा होता रहा तो देश के लोगों का अपने प्रतिनिधियों पर विश्वास लगातार कमजोर होता जाएगा और फिर संसद की महत्ता को कायम रखना कठिन हो जाएगा।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

कर्जमाफी नहीं आय बढ़ाने की दरकार

किसानों के लिए कुछ करने की जरूरत शीर्षक से लिखे अपने लेख में संजय गुप्त ने कहा है कि आम चुनाव से पहले किसानों की समस्याओं का हल निकालना मोदी सरकार के लिए बहुत बड़ी चुनौती है। माना कि मोदी सरकार भी किसानों की समस्या का हल निकालने में नाकामयाब रही है, लेकिन यहां सवाल यह खड़ा होता है जो कांग्रेस अब किसानों के प्रति हमदर्दी दिखाते हुए सत्ता में आते ही इनकी समस्याओं का हल निकालने के दावे कर रही है, वह इतने लंबे समय तक देश पर राज करने के बाद भी किसानों की समस्याएं हल क्यों नहीं कर पाई? कृषि से देश को आर्थिक फायदा भी होना चाहिए, किसानों का कर्जा अगर सरकारें इसी तरह माफ करती रहीं तो कृषि सरकारी खजाने भरेगी नहीं, बल्कि खाली करेगी। यह बात सभी दलों को समझनी होगी। किसानों को भी चाहिए कि सरकारों से कर्ज माफी नहीं, बल्कि आय में बढ़ोतरी करने के उपायों की मांग करें।

राजेश कुमार चौहान, जालंधर

निजी रेडियो चैनल

हाल में निजी रेडियो चैनलों को भी समाचार प्रस्तुत करने की अनुमति मिली है। मगर सरकार ने फैसले पर कई प्रकार की शर्तें भी लागू कर दी हैं, जो कहीं न कहीं निजी रेडियो संस्थानों के साथ अन्याय जैसी लगती हैं। एक तरफ देश के अंदर निजी चैनलों की बाढ़ सी है, वहीं दूसरी तरफ सरकार के आदेश के अनुसार निजी रेडियो चैनल उसी समाचार को प्रस्तुत कर सकेंगे जो एआइआर यानी आकाशवाणी द्वारा सुनाया जाएगा। इसका मतलब यह है कि निजी रेडियो चैनल अपने मनमुताबिक खबरें नहीं सुना सकते। दरअसल सरकार का मानना है कि निजी रेडियो संस्थानों को मनमुताबिक खबर सुनाने की छूट दी जाती है तो इसे खबरों को तोड़- मरोड़ कर या फिर गलत खबरों का भी प्रचार-प्रसार हो सकता है। मगर इसका यह मतलब नहीं कि निजी रेडियो को खबर प्रस्तुत करने की आजादी छीन ली जाए। देश के अंदर जिस प्रकार से न्यूज चैनलों को प्रेस काउंसिल ऑफ इंडिया के द्वारा विनियम किया जाता है उसी प्रकार से निजी रेडियो के लिए भी किया जा सकता है। आज देश के अंदर तकरीबन 300 निजी रेडियो चैनल चल रहे हैं। इनका प्रसार बड़े शहरों से लेकर छोटे शहरों तक है। अगर निजी रेडियो पर भी खबरों को दिया जा सकेगा तो ये एक बड़े तबके के लोगों तक पहुंचेंगी जो काफी फायदेमंद साबित हो सकती है।

पीयूष कुमार, नई दिल्ली

गंदगी की अनदेखी

बदलने समय में हम सामाजिकता से दूर होते जा रहे हैं। जब हम देखते हैं सड़कों पर लोगों को इधर- उधर थूकते और कूड़ा फेंकते हुए, लेकिन हम कुछ नहीं बोलते हैं। सोचते हैं कि इससे हमें क्या फर्क पड़ता है। जब कभी हमारे घर के बाहर कूड़ा इकट्ठा हो जाता है तब सरकार पर तंज कसते हैं। हमें अपनी यह सोच बदलने की जरूरत है। हमें न खुद गंदगी करनी चाहिए और न करने वाले की अनदेखी करनी चाहिए।

सौरभ शुक्ला, दिल्ली स्कूल ऑफ जर्नलिज्म

युवा पीढ़ी की नई सोच

आज अनेक समस्याओं में एक समस्या युवा पीढ़ी के अपने परिजनों से संबंधों को लेकर है। प्रायः यह कहा जाता है कि बच्चे माता-पिता का सम्मान नहीं करते। कायदे में इस समस्या के मूल में कहीं न कहीं माता-पिता की पुरानी सोच भी जिम्मेदार होती है। वे जिस परिवेश में पले-बढ़े होते हैं, उसी के अनुरूप अपने बच्चों को भी ढालना चाहते हैं। जबकि आज का दौर अलग है। बच्चों की सोच अलग है। अगर माता-पिता बच्चों से दोस्ताना संबंध रखें और उनकी इच्छा की भी कद्र करें तो इस समस्या से आसानी से निपटा जा सकता है।

हरगोपाल तनेजा, सोनीपत

महिलाओं का सम्मान

आज समाज में महिलाएं सुरक्षित नहीं हैं। रोज उनके साथ तरह-तरह के अपराध की घटनाएं होती हैं। महिलाओं के साथ अपराध करने वाले प्रायः पुरुष ही होते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि उन्हें जन्म देने वाली एक महिला ही है। वह महिला जो त्याग की प्रतिमूर्ति है। हमेशा हमारी खुशियों के लिए त्याग करती है। मां, बहन, बेटी और पत्नी हम सभी की जिंदगी में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इसलिए हम सभी को उनके सम्मान की रक्षा करनी चाहिए।

मौ. वाजिद अली, आंबेडकर कॉलेज

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल : mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 23359961-62, नोएडा कार्यालय : 0120-3915800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।